



भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद : एक विश्लेषण

*डॉ.नरेन्द्र नागर **मधुलिका

*पीडीएफ, आईसीसीएसएसआर, राजनीति विज्ञान

सीसीएस विश्वविद्यालय

मेरठ, उत्तरप्रदेश, भारत

सहायक प्राध्यापक, जीआईपीटीएस कॉलेज,

मेरठ, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भारत में राष्ट्र निर्माण के मार्ग में जो बाधाएँ मौजूद हैं, उनमें क्षेत्रवाद महत्वपूर्ण है। देश में जो विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, उनकी अभिव्यक्ति क्षेत्रवाद के माध्यम से भी होती है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि प्रादेशिकता या क्षेत्रवाद पर आधारित विभिन्नता ने भारत में बहुत ही भयावह स्थिति प्राप्त कर ली है। भारतीय सन्दर्भ में क्षेत्रवाद से तात्पर्य राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव उसके प्रति भक्ति या विशेष आकर्षण से है स्पष्टतः क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की वृहत भावना का विरोधी है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस समस्या और समाधान पर विचार किया गया है।

भूमिका

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका अपने पास की भूमि से भावात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और कालान्तर में अपने पूरे क्षेत्र के प्रति उसकी निष्ठा विकसित हो जाती है। श्री राम माहेश्वरी ने क्षेत्र को एक समाजशास्त्रीय अभिधारणा कहा है। किसी भू-भाग को क्षेत्र कहने के लिए कुछ तत्वों का होना अनिवार्य है, लेकिन अभी तक उन तत्वों का निर्धारण ठीक प्रकार से नहीं हो पाया है। यदि भौगोलिक रूप से निश्चित किसी स्थान पर कुछ प्रक्रियाएँ एवं धारणाएँ समाज के अन्य भागों से भिन्न हो और लगातार काफी समय से चाहे अलग-अलग मात्रा में भी आ रही हों तो उस भाग को एक अलग क्षेत्र कहा जा सकता है। ये प्रक्रियाएँ और धारणाएँ भौगोलिक

धार्मिक रीति-रिवाज सम्बन्धी संस्कृति आर्थिक और राजनीतिक विकास की स्थिति रहन-सहन के ढंग तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हो सकती हैं। भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय एकता और एकात्मकता के उत्साह में विद्वानों के द्वारा प्रायः क्षेत्रीयवाद के निषेधात्मक परिणामों को अधिक प्रदर्शित किया गया है। जबकि इसके सकारात्मक पक्षों को नकार दिया गया है। 1960 के दशक में कुछ विदेशी पर्यवेक्षक का कहना था कि या तो भारत में बल्नीकरण होगा या अधिनायकवादी सत्ता की स्थापना होगी, क्योंकि धीरे-धीरे क्षेत्रीय स्वायत्ता के आन्दोलन जड़ पकड़ते जा रहे हैं। एक विद्वान का तो यह कहना है कि आज भारत में निश्चित रूप से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जो वाद शासन करता



है उसे क्षेत्रवाद कहा जा सकता है। 7वीं लोकसभा में अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट पर विचार करते समय सदस्यों ने पाया कि आज भारत में भारतीय ही अल्पसंख्यक बन गये हैं, क्योंकि धर्म जाति और क्षेत्र के आधार पर लोगों की पहचान होती है न कि भारतीयता के आधार पर। क्षेत्रीय आन्दोलन बिना किसी बाधा के फल-फूल रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य स्थानीय भाषा संस्कृति आर्थिक हित और क्रिया-कलापों का संरक्षण और उन्नयन है। हेविड हिन्टेज का कहना है कि “सामान्य रूप से क्षेत्रीयतावाद को एक प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन माना जा सकता है, जो कि बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत की गयी अथवा उग्र केन्द्रीकरण के विपरीत है, लेकिन इसे केवल सरकारी प्रशासकीय राजनीतिक नियंत्रण की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए।” हिन्टेज इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि “क्षेत्रीयता की समस्याएँ तभी पैदा होती हैं जब दो या दो से ज्यादा तत्व जैसे भौगोलिक एकान्तता स्वतंत्र ऐतिहासिक परम्परा जातिय अथवा धार्मिक विशिष्टता अथवा स्थानीय या आर्थिक वर्ग के हित इकट्ठे हो जाते हैं।” क्षेत्रीयतावाद एक गतिशील एवं व्यवहारिक अवधारणा है। यह शायद किसी एक कारक से निर्धारित होता है, बल्कि क्षेत्रीयतावाद के पुनःनिर्माण एवं समर्थन के लिए आर्थिक पिछड़ेपन के रूप में राजनीतिकरण सहित अनेक परिस्थितियाँ और कारक मौजूद रहते हैं। बोम्बवाल उन लोगों की आलोचना करते हैं जो क्षेत्रीयतावाद को एक संकीर्ण स्थानीय या क्षेत्रीय स्वार्थों के आधार पर निषेधात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। इसके द्वारा विशिष्टीकरण होता है और भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को हानि पहुँचायी जाती है।

इकबाल नारायण के अनुसार “भारतीय राजनीति का एक प्रमुख निर्धारण तत्व क्षेत्रीयतावाद है जिसके कारण लोग भारतीय संघ की तुलना में उस राज्य क्षेत्र विशेष को अधिक महत्व देते हैं जिसमें वे रहते हैं।”

इकबाल नारायण का मानना है कि प्रान्तीयतावाद एवं क्षेत्रीयतावाद की इस प्रवृत्ति को समान करने और सभी को राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बनाने की दृष्टि से हमारे संविधान द्वारा एकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गयी है। क्षेत्रीयतावाद के कुपरिणामों पर दृष्टि डालते हुए लेखक का कहना है कि फिर भी अनेक लोगों के मस्तिष्क में भारतीय नागरिक होने की तुलना में बंगाली, बिहारी, मद्रासी, राजस्थानी, पंजाबी या महाराष्ट्रीयन होने की चेतना अधिक रहती है और अनेक अवसरों पर क्षेत्रीय संकीर्णता राष्ट्रीयता को बुरी तरह दूषित कर देती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि क्षेत्रीयतावाद सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों आयामों वाली अवधारणा है। भारत एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न धर्म जातियों, उपजातियों भाषाओं के बोलने वाले लोग निवास करते हैं। भारत एक बहुजातीय बहुभाषीय और बहुधार्मिक महाद्वीपीय आकार का देश है। ये जातीय धार्मिक तथा भाषायी समूह कुछ विशेष क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा ये उस क्षेत्र को अपना मानते हैं और उन क्षेत्रों में दूसरों क्षेत्रों के लोगों को निवास करने से रोकते हैं। साथ ही दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा अपने क्षेत्र को अधिक विकसित देखना चाहते हैं और अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान भी रखना चाहते हैं। इसी संकीर्ण मानसिकता के चलते भारत में क्षेत्रवाद का उदय हुआ।



स्वतंत्रता के बाद भारत में क्षेत्रवाद के उदय को रोकने के अनेक प्रयास किये गये, ताकि भारत के लोग अपने आपको केवल भारतीय समझें न कि किसी राज्य या क्षेत्र का नागरिक इसलिए भारत में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गयी है, लेकिन इसके बावजूद कुछ क्षेत्रीय नेताओं ने भारतीय नागरिकों की क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काना शुरू कर दिया। आज क्षेत्रीयतावाद विभिन्न रूपों में भारतीय संघ के सामने चुनौती खड़ी कर रही है।

आर्थिक शैक्षिक और राजनैतिक असमानता भी क्षेत्रीय भावनाओं को उभारने का कार्य कर रही है। उदाहरणार्थ 1972-73 तेलगांवा प्रजा समिति का आन्दोलन, आंध्रप्रदेश में तेलगांवा आन्दोलन, गुजरात में सौराष्ट्र का आन्दोलन, महाराष्ट्र में विदर्भ का आन्दोलन चलाये गये क्योंकि यहाँ की जनता में यह महसूस किया कि सरकार इनके साथ यह भेदभाव कर रही है।

भूमिपुत्र रूपी क्षेत्रवाद किसी प्रकार की राजनैतिक आर्थिक सांस्कृतिक स्वतंत्रता की बात नहीं करता। इस प्रकार के आन्दोलन उन लोगों के खिलाफ चलाये गये जो दूसरे राज्यों से आकर उनके राज्यों में बस जाते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण महाराष्ट्र में शिवसेना का आन्दोलन है। मायनर विनर के अनुसार 'भूमिपुत्र का सिद्धान्त' का आन्दोलन 1960 में अन्तर्राज्य प्रवासी बढ़ने के कारण उदित हुआ। दूसरा आन्दोलन असम में चलाया गया नया आन्दोलन देश के दूसरे राज्यों तथा बांग्लादेश से आये शरणार्थियों के खिलाफ चलाया गया। क्षेत्रीयतावाद की भावना भारत में नयी नहीं है, बल्कि यह प्राचीन समय से चली आ रही है। भारत में स्वतंत्रता से पहले तथा स्वतंत्रता के बाद अनेक क्षेत्रीय आन्दोलन चले

हैं। जिन्होंने समय-समय पर राष्ट्रीयता को चुनौती दी है। इस प्रकार उपयुक्त समीक्षा से स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद गहरी पकड़ बना चुका है, जो आज भी अपना प्रभुत्व कायम किये हुए है।

जिस प्रकार राष्ट्रीयतावाद के संकुचित व उदार दो पक्ष हैं, उसी प्रकार क्षेत्रीयतावाद अपने संकुचित व उदार दोनों ही रूपों में प्रस्फुटित होता है। इकबाल नारायण द्वारा इसे निम्न शब्दों में बाँधा गया है। “यह किसी क्षेत्र की जनता की इच्छाओं को लक्ष्य को एकरूपता प्रदान करता है। इसी दृष्टिकोण को राज्य पुनर्गठन आयोग (1955) के द्वारा स्वीकार किया गया है।”

यह व्यक्तित्व का सकारात्मक प्रकटीकरण है एस.के. खन्ना तो इसकी सकारात्मक भूमिका को और भी प्रभावी मानते हुए कहते हैं कि “क्षेत्रीयतावाद राजनीतिक रूप से विभाजित जनसंख्या को समान भाषा, धर्म और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर भाईचारा पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करती है।”

क्षेत्रीयतावाद और राष्ट्रीयतावाद की अवधारणाओं पर स्वतंत्र रूप से विचार करने के बाद उनको सामान्य राजनीतिक सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में रखने आवश्यक हो जाता है। राष्ट्रीयतावाद और क्षेत्रीयतावाद दोनों ही राजनीतिक व्यवस्था के प्रकार्यों को प्रभावित एवं संचालित करती है तथा उस वातावरण का निर्माण करती है जिसके अन्तर्गत कोई भी व्यवस्था कार्य करती है।

क्षेत्रीयतावाद का सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य

“ऐतिहासिक रूप से भारत में क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और विकास अपनी प्रारम्भिक व्यवस्था में 19वीं शताब्दी के मध्य ब्रिटिश काल से प्रारम्भ



हो जाता है। बंगाल में साहित्य सुधार और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की गतिविधियाँ इसकी प्रारम्भिक अवस्था थी” भारतीय समाज में क्षेत्रीयतावाद एक सामाजिक शक्ति के रूप में हमेशा विद्यमान रहा है लेकिन इसने अलग-अलग समय में विविध प्रकार से कार्य किया है। यह पैन इन्डियन और क्षेत्रीय शक्तियों के मध्य टकराव के अलग-अलग प्रकार के माडल बनता रहा है। 19वीं शताब्दी के मध्य देश भक्ति की भावना अपनी प्रान्त विशेष तक ही सीमित थी। 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हम अखिल भारतीय राष्ट्रियता की भावना का विचार पाते हैं, क्योंकि कोई एक राष्ट्र खोजा नहीं जाता बल्कि उसका निर्माण किया जाता है। इससे पहले कि एक अखण्ड भारत वर्ष विचार उभर सके, उससे पूर्व अनेक दशकों तक राष्ट्रियता के भावों को क्षेत्रीयता तक ही सीमित रहना पड़ा। क्षेत्रीयता की भावना को सम्पुष्टि मुख्य रूप से भाषा के द्वारा भी मिली। भारत में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रसार भाषायी एवं सांस्कृतिक आधार पर निर्मित क्षेत्रों में क्षेत्रीयता की चेतना बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान दो प्रकार का राजनीतिक जागृत्तिकरण गठित हुआ। एक क्षेत्रीय और दूसरा उर्ध्वधर। इस प्रक्रिया के द्वारा यह देखा गया है कि कुछ इलाकों में भाषाओं के आधार पर मध्यम वर्ग दूसरे क्षेत्र के साथ शामिल हो गया। लोकतान्त्रिक व्यवस्था के आधारभूत स्तम्भ राजनीतिक दल ही हैं। इस सत्य से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है लेकिन क्षेत्रीयवाद के आधार पर क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय दलों को बहुत नुकसान पहुँचाया है। स्वतंत्रता के बाद भी क्षेत्रीय दलों का बहुत ज्यादा बोल-बाला

है। आज इनके बिना भारतीय राजनीति अधूरी ही नहीं बल्कि असम्भव भी है।

वास्तव में प्रत्येक क्षेत्र के द्वारा क्षेत्रीयता की भावना के विकास को महसूस किया गया परन्तु यह विकास देश के भागों में अलग-अलग समय पर हुआ। उपनिवेशवादी सत्ता ने भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न स्थानों का विभिन्न रूप में क्षेत्रीयता की भावना के उदय में सहयोग दिया।

परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद किस तरह प्रभावी हो रहा है, तो अनुभवों के आधार पर कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

- 1 क्षेत्रवाद अव्यवस्था, भ्रष्टाचार और अपराधीकरण की राजनीति को बढ़ावा देते हैं।
- 2 क्षेत्रवाद धर्म पर आधारित राजनीति को बढ़ावा देता है।
- 3 क्षेत्रवाद राष्ट्रवाद को कमजोर करती है।
- 4 क्षेत्रवाद में राष्ट्रीय समस्याओं की अपेक्षा क्षेत्रीय समस्याओं पर ज्यादा बल दिया जाता है।
- 5 क्षेत्रवाद केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को प्रभावित करता है।
- 6 क्षेत्रवाद संघीय व्यवस्था का पतन कर सकती है।
- 7 क्षेत्रवाद भाषा की समस्या को जटिल बनाता है।
- 8 क्षेत्रवाद केन्द्रीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण पर अधिक बल देता है।
- 9.क्षेत्रवाद में क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक दलों की स्थिति को कमजोर करता है।



अध्ययन का निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि संकुचित रूप को त्याग दिया जाये तो न्यायिक सक्रियता राष्ट्रीयतावाद के विरुद्ध कार्य करती हुई प्रतीत नहीं होती। वरन् राष्ट्र निर्माण में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। क्षेत्र मिलकर ही किसी राष्ट्र का निर्माण करते हैं, यदि क्षेत्र का विकास नहीं तो राष्ट्र का निर्माण शून्य में नहीं हो सकता क्योंकि क्षेत्र ही किसी राष्ट्र को साकार रूप प्रदान करते हैं। अतएव यह दृष्टिकोण भ्रामक प्रतीत होता है कि राष्ट्रीयता के विकास के मार्ग में क्षेत्रीयता का विकास बाधक होता है। 'क्षेत्रीय बनाम राष्ट्रीयता' की भावना संकीर्ण स्वार्थ लिप्त राजनेतों के नारे मात्र हो सकते हैं, जिन्हें जनता को गुमराह करने और वोट लेने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। उदारवादी दृष्टिकोण से देखने पर राष्ट्रीयता के हित और क्षेत्रीयता के हितों में टकराव स्थायी और चीरकालीन नहीं हो सकता। अध्ययन की उपादेयता इसी निष्कर्ष को सत्यापित करने में है कि केवल संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण ही क्षेत्रीयतावाद एवं राष्ट्रवाद के मध्य संघर्ष प्रतीत होता है जबकि सकारात्मक रूप से देखने पर दोनों एक-दूसरे का पोषण करते प्रतीत होते हैं। भारतीय राष्ट्र के निर्माण की ओर कुछ सम्भावनाओं को तलाशना ही इस अध्ययन की प्रासंगिकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गाँधी जी राय, भारतीय शासन प्रणाली (पटना: भारतीय भवन 1993) पृ. 351
2. बी. एल. फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीति (आगरा: साहित्य भवन 1955) पृ. 723

3. नन्दलाल बोस, 'भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद'

(आगरा: प्रतियोगिता दर्पण नवम्बर 1955) पृ. 598

4. हेमा चार्ली, इन्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दु शोराल रिफार्म

5. एम.सी. सिंहल, भारतीय शासन एवं राजनीति (लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा)